ISSN 0975-735X

संपादक
डॉ. गिरिराजशरण अग्रवाल
डॉ. मीना अग्रवाल

शोध दिशा

58

UGC APPROVED CARE LISTED JOURNAL

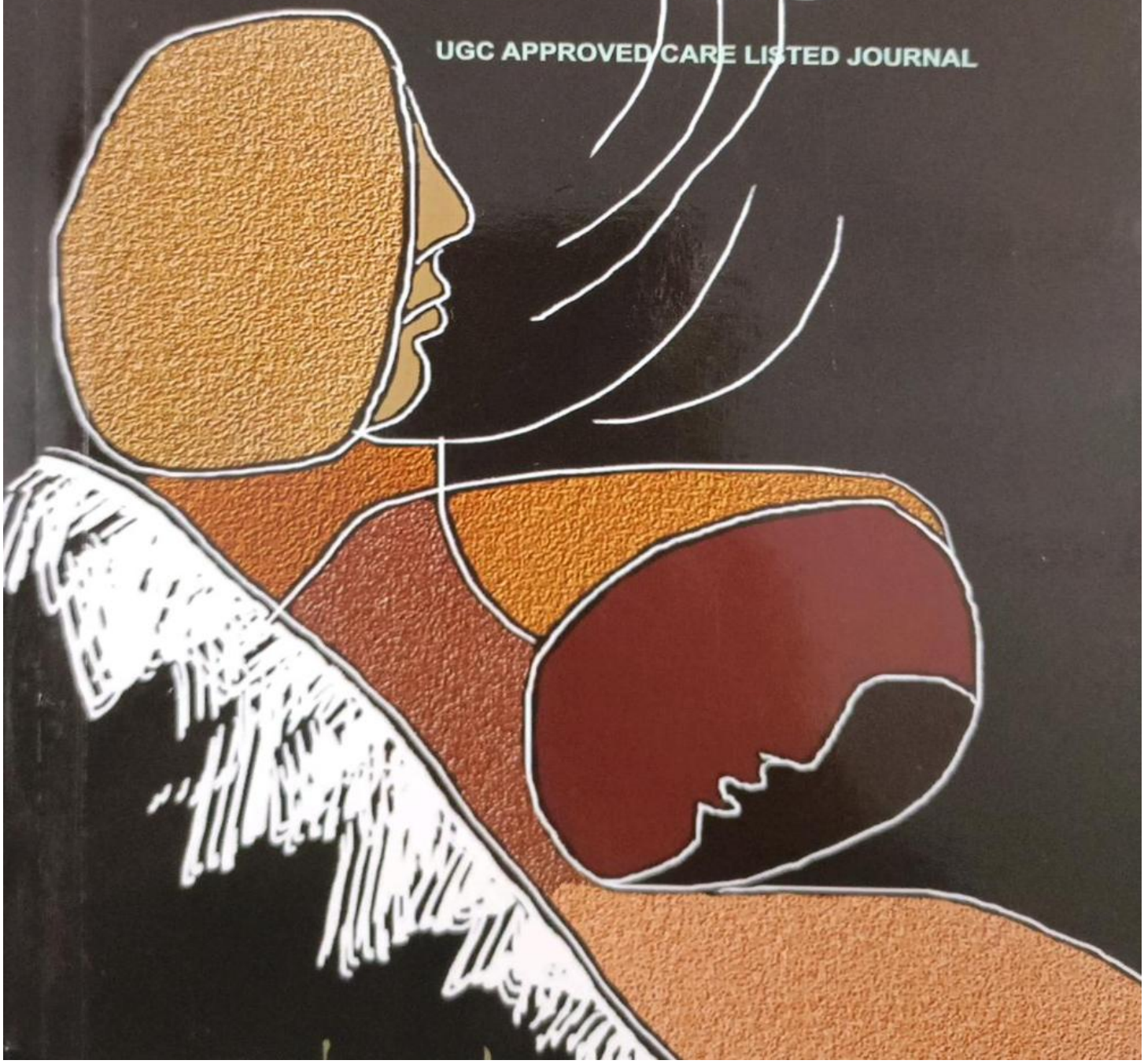

Scanned by Scanner Go

शोध दिशा

ISSN 0975-735X

विश्वस्तरीय शोध-पत्रिका

केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा से अनुदान प्राप्त

UGC APPROVED CARE LISTED JOURNAL

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा मान्यता प्राप्त शोध पत्रिका

शोध अंक 58-2 अप्रैल-जून 2022 400.00 रुपए

संपादकीय कार्यालय

हिंदी साहित्य निकेतन, 16 साहित्य विहार,
बिजनौर 246701 (उ०प्र०)
फोन : 0124-4076565, 09557746346
ई-मेल : shodhdisha@gmail.com
वैब साइट : www.hindisahityaniketan.com

क्षेत्रीय कार्यालय

हरियाणा
डॉ० मीना अग्रवाल
ए-402, पार्क व्यू सिटी-2 सोहना रोड,
गुड़गाँव (हरियाणा)
फोन : 0124-4076565, 07838090237

दिल्ली एन०सी०आर०
डॉ० अनुभूति
सी-106, शिवकला अपार्टमेंट्स
बी 9/11, सेक्टर 62, नोएडा
फोन : 09958070700

(सभी पद मानद एवं अवैतनिक हैं।)

संपादक
डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल
07838090732

प्रबंध संपादक
डॉ० मीना अग्रवाल

संयुक्त संपादक
डॉ० शंकर क्षेम
प्रमोद सागर

उपसंपादक
डॉ० अशोककुमार
डॉ० कनुप्रिया प्रचण्डिया

कला संपादक
गीतिका गोयल/ डॉ० अनुभूति

विधि परामर्शदाता
अनिलकुमार जैन, एडवोकेट

आर्थिक परामर्शदाता
ज्योतिकुमार अग्रवाल, सी०ए०

शुल्क

आजीवन (दस वर्ष): छह हजार रुपए
वार्षिक शुल्क : एक हजार रुपए
यह प्रति : चार सौ रुपए

प्रकाशित सामग्री से संपादकीय सहमति आवश्यक नहीं है। पत्रिका से संबंधित सभी विवाद केवल बिजनौर स्थित न्यायालय के अधीन होंगे। शुल्क की राशि 'शोध दिशा' बिजनौर के नाम भेजें। (सन् 1989 से प्रकाशन-क्षेत्र में सक्रिय)

स्वत्वाधिकारी, मुद्रक, प्रकाशक डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल द्वारा श्री लक्ष्मी ऑफसैट प्रिंटर्स, बिजनौर 246701 से मुद्रित एवं 16 साहित्य विहार, बिजनौर (उ०प्र०) से प्रकाशित। पंजीयन संख्या : UP HIN 2008/25034

संपादक : डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल

Scanned by Scanner Go

अनुक्रम

'तेजवंत तेजाजी' महाकाव्य में लोकसंस्कृति/ **मोहित कुमार** 11

फिल्मों में लोकसंगीत : एक अवलोकन/ **प्रो॰ माला मिश्र** 17

लोकसंस्कृति : समकालीन परिदृश्य/ **डॉ॰ राकेश कुमार दुबे** 21

मोहन राकेश के चयनित एकांकी/ **डॉ॰ ममता कुमारी** 26

पंजाब की 21वीं सदी की हिंदी कविता में दलित-विमर्श/ **प्रीति गुप्ता, डॉ॰ अनिल कुमार पांडेय** 31

रंगमंच का बदलता स्वरूप/ **डॉ॰ प्रमोद परदेशी** 35

भक्ति-आंदोलन में मराठी एवं गुजराती संतों का प्रदेय/ **डॉ॰ राम किंकर पांडेय** 40

'जो इतिहास में नहीं है' और 'धूणी तपे तीर' उपन्यासों में अभिव्यक्त आदिवासी आंदोलन/ **डॉ॰ मृदुल जोशी, आँचल चौधरी** 48

'मुहता नैणसी री ख्यात' में वर्णित समाज और संस्कृति/ **डॉ॰ रणजीत सिंह चौहान** 54

'जहाजिन' उपन्यास : एक गिरमिटिया महिला की संघर्षकथा/ **डॉ॰ मुन्नालाल गुप्ता** 59

भारतीय नाट्यकला में संगीत का महत्त्व/ **कृष्ण कुमार** 65

हरियाणवी लोकगीतों में पर्यावरण चेतना/ **डॉ॰ सुमन** 70

हरियाणवी लोकगीतों में दर्शन-तत्त्व/ **डॉ॰ विकास कुमार, डॉ॰ मनोज कुमार** 75

असमिया लोकसाहित्य में राम : एक अध्ययन (लोकगीतों के विशेष संदर्भ में)/ **तृष्णा दत्त** 81

परंपरा और आधुनिकता के मध्य स्त्री की अस्मिता का संघर्ष/ **श्वेतासिंह** 86

21वीं सदी के हिंदी उपन्यासों में कृषक जीवन : एक विवेचन/ **रीना चौधरी** 92

असम की बोड़ो जनजाति का सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन/ **डॉ॰ दिनेश साहू** 97

दैनिक भास्कर की वेबसाइट पर प्रकाशित खबरों और आलेखों का दिल्ली-एनसीआर के युवाओं पर प्रभाव: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन/ **आदर्श कुमार** 102

अफगानिस्तान संकट पर वैश्विक समुदाय की निष्क्रियता/ **डॉ॰ मोहनलाल जाखड़** 108

चोलकालीन स्थानीय स्वशासन/ **डॉ॰ मनीष कुमार साव** 114

भारत में आर्थिक विकास में कृषि आधारित उद्योगों की भूमिका/ **रमाशंकर शर्मा, डॉ॰ स्वाति जैन** 118

छात्रों के अकादमिक प्रदर्शन पर पढ़ने की आदतों का प्रभाव/ **शीतल शर्मा, डॉ॰ वर्षा शर्मा** 123

वर्तमान भारतीय उद्योग-एक विश्लेषणात्मक अध्ययन/

ISSN 0975-735X

Scanned by Scanner Go

डॉ॰ अजीत सिंह, रानी पाल 128
उच्च शिक्षण संस्थानों में कार्यरत महिलाओं की समस्याएँ :
एक समाजशास्त्रीय अध्ययन/ डॉ॰ संजय कुमार, शशांत कश्यप 133
भारत में संघवाद की प्रवृत्ति में पंचायतीराज व्यवस्था की भूमिका/
डॉ॰ नीशू कुमार 139
भारत में कार्यस्थल पर महिला उत्पीड़न एवं उसका समाधान/ डॉ॰ लव कुमार 145
औपनिवेशिककालीन भारत में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी/
डॉ॰ मनोज सिंह यादव, डॉ॰ प्रदीप नारायण डोंगरे 151
19वीं शताब्दी में राजस्थान में दस्तकार वर्ग का स्थानापन्न (प्रवसन) :
एक ऐतिहासिक विश्लेषण/ डॉ॰ रश्मि गुर्जर 155
भारत में राष्ट्रवाद का उदय दिशा और दशा : एक विश्लेषण/
डॉ॰ रामचंद्र सिंह, नरेंद्र कुमार 159
मारवाड़ लोकपरिषद् आंदोलन में महिलाओं की भूमिका/
रामकुमार चौधरी, डॉ॰ बाबूलाल खटीक 166
भारत में महिला सशक्तिकरण का अवलोकन : पंचायतीराज व्यवस्था के
संदर्भ में/ अमित कुमार, डॉ॰ निधि रायजादा 171
सार्वजनिक उद्यमों का निजीकरण, आर्थिक नीति और विकास
पर इसके प्रभाव/ ममता कुमारी 178
सर्वोदय : आधुनिक सभ्यता की एक वैकल्पिक जीवनदृष्टि/
मनीष शर्मा, विनोद कुमार 184
भारत में महिला सशक्तिकरण की स्थिति और चुनौतियाँ/
डॉ॰ अनामिका तिवारी, अंकिता पांडेय 194
डॉ॰अंबेडकर के शिक्षा-संबंधी विचारों का विश्लेषणात्मक अध्ययन/
डॉ॰ बृजेन्द्र सिंह बौद्ध 199
स्कूल प्रमुख और छात्र परिणामों में उनकी भूमिका/ डॉ॰ सविता कौशल 205
झज्जर घराने के फनकार पं॰ पन्नालाल सोलंकी जी का हिंदुस्तानी शास्त्रीय
गायन में योगदान/ योगेश कुमार 212
महिला गुप्तचर : प्राचीन भारत के विशेष संदर्भ में /सुमिति सैनी 218
दैनिक जागरण का सरोकार केंद्रित अभियान : सकारात्मक खबरों और पुरस्कारों
से मिलती अंतर्राष्ट्रीय ख्याति/ डॉ॰ धीरज कुमार, डॉ॰ मानेंद्र कुमार सिंह 224
सार्वजनिक पुस्तकालय और पुस्तकालय पेशेवरों का सूचनाकाल में भविष्य/
डॉ॰ मानेन्द्र कुमार सिंह, डॉ॰ धीरज कुमार 231
दलित आत्मकथा में निहित जीवन-संघर्ष/ हिमाक्षी नाथ 240
राजनीतिक सहभागिता में सोशल मीडिया की भूमिका/ मुकेश 244
शिक्षा में समतामूलक व समावेशी विमर्श के संदर्भ में
राष्ट्रीय शिक्षानीति (2020) की समालोचना/ डॉ॰ अजीत कुमार बोहत 250

ISSN 0975-735X

Scanned by Scanner Go

सर्वोदय : आधुनिक सभ्यता की एक वैकल्पिक जीवनदृष्टि

मनीष शर्मा
सीनियर रिसर्च फैलो, दर्शन विभाग,
पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़
विनोद कुमार
सहायक प्राचार्य, राजनीति विज्ञान,
आर॰के॰एस॰डी॰ (पीजी) कॉलेज, कैथल (हरियाणा)

वर्तमान विश्व एक ऐसी महामारी के दौर से गुजर रहा है, जिसका विस्तार मानव-इतिहास में दर्ज अन्य सभी महामारियों से कई गुना अधिक है। यह दौर मनुष्य-जीवन में बहुत से दीर्घकालीन परिवर्तनों का कारण बन रहा है, जो मनुष्यता को हमेशा के लिए बदलने की क्षमता रखते हैं। यह वह समय है जब मनुष्य को ठहरकर अपने भविष्य की दशा व दिशा पर एक बार फिर से सोचना पड़ रहा है। महामारी का यह दौर बहुत से उन विषयों की ओर भी ध्यान आकर्षित कर रहा है जिन्हें मनुष्य ने विज्ञान पर अति-विश्वास से उत्पन्न अहं के कारण दरकिनार कर दिया था। इस संकट ने एक बार फिर से विज्ञान की सीमाओं को रेखांकित करने के साथ प्रकृति की शक्तियों के सम्मुख मनुष्य की असमर्थता को प्रदर्शित कर दिया है। अत: यह समय विश्व के तमाम दार्शनिकों एवं विचारकों के लिए पुनर्चिंतन का दौर बन गया है।

अनेक स्थानीय समस्याओं के मूल में विश्व की तीन बड़ी समस्याओं को मुख्यत: देखा जा सकता है–पहली, अमीर और गरीब के मध्य अविश्वसनीय खाई एवं इससे उत्पन्न असंतोष का ज्वार। दूसरी, उपभोगवादी संस्कृति से उत्पन्न पर्यावरणीय खतरे और दिखावे से उत्पन्न अनैतिक प्रतिस्पर्धा। तीसरी, एक मनुष्य का अन्य मनुष्यों के साथ परस्पर आत्मीय संबंधों में भयंकर गिरावट के कारण मशीनीकृत यांत्रिक रिश्तों का चलन। यदि हम गहनता से विचार करें तो हमारे जीवन की तमाम समस्याएँ, जैसे–बेरोजगारी, गाँव से पलायन, सत्ता का केंद्रीयकरण, भ्रष्टाचार, धार्मिक उन्माद, नई बीमारियों का जन्म, कुपोषण, प्रतिस्पर्धा, अकेलापन, तनाव, अवसाद एवं खंडित मानसिकता इत्यादि उपर्युक्त तीनों समस्याओं के ही विभिन्न प्रकार हैं। इसी क्रम में आप इन तीन समस्याओं में कोरोना महामारी के कारणों को भी देख सकते हैं।

जिस प्रकार कोई व्यक्ति अपने जीवन के दुख एवं चुनौतियों के क्षणों में आत्म-विश्लेषण, निरीक्षण एवं परीक्षण करने के लिए प्रेरित होता है उसी प्रकार ये दौर समस्त मनुष्य जाति के लिए अपनी मौजूदा सभ्यता, इसके लक्ष्य और जीने के तरीकों को लेकर पुनर्विचार करने का अवसर प्रदान करता है। आज जिस दिशा में मनुष्य गतिमान है, क्या यह सही दिशा है? क्या यह दिशा मनुष्य जीवन के विभिन्न आयामों को स्वीकार करती है और उन्हें विकसित करने में सक्षम है? हमें इन प्रश्न की गहन पड़ताल करने के लिए वर्तमान सभ्यता के दार्शनिक एवं ऐतिहासिक कारणों को समझना होगा।

ISSN 0975-735X

Scanned by Scanner Go

वर्तमान समस्याओं के दार्शनिक व ऐतिहासिक कारण–वर्तमान विश्व के अधिकतर समाजों का जीवन जिन नियमों से संचालित हो रहा है वे नियम मुख्य तौर पर पश्चिम के प्रबोधन (enlightenment) काल में उत्पन्न आर्थिक, मनोवैज्ञानिक और राजनीतिक सिद्धांतों एवं संस्थाओं से उत्पन्न जीवन दृष्टि (विश्व दृष्टि) से संचालित हैं। इसी आधार पर मनुष्य ने विज्ञान के क्षेत्र में होनेवाले आश्चर्यजनक आविष्कारों एवं इनसे उत्पन्न उद्योगों से उत्साहित होकर धर्म पर राज्य को और भावनाओं पर तर्क को वरीयता देना प्रारंभ कर दिया। इस प्रचलित विश्वदृष्टि से निर्मित सभ्यता को पश्चिमी जगत ने आधुनिकता का नाम दिया।

इस आधुनिकता के फलस्वरूप गणित, भौतिकी और अन्य विषयों में नए ज्ञान में वृद्धि के साथ अब इंसान कुछ भी निर्मित कर सकता हैं, जिसकी वे कल्पना कर सकते हैं और कभी-कभी उससे आगे भी। हालाँकि सैद्धांतिक रूप से मनुष्य ने उत्पादन की समस्या पर पार लिया है। लेकिन इंसान की कामयाबी की इस कहानी के साथ एक अन्य बदलाव भी निरंतर रहो रहा है जो आंतरिक है। आधुनिकताजनित इन अधिसंरचनाओं का निर्माण करते समय मनुष्य अपनी आत्मा, अपनी चेतना व संवेदना को अनियोजित व अनियंत्रित तरीके से बदल रहा है। परिणामस्वरूप वह मशीनों के माध्यम से अधिकतम उत्पादन करने की होड़ में खुद को ही मशीन का हिस्सा बनाने पर तुला है। इस क्रम में पहले मनुष्य बहिर्गामी होने की दिशा में अपने ही लालच से वशीभूत होकर पूँजीवाद को जन्म देता है और फिर खुद ही उसका शिकार हो जाता है। इस बढ़ते लालच के कारण वह प्रकृति के साथ हेरफेर (manipulation) और अन्य मनुष्यों का वस्तुकरण (objectification) करने लगता है। इस हेरफेर और लालच के कारण अधिकतम लाभ कमाने की अंतहीन इच्छा ने मानव को स्वयं के वास्तविक स्वरूप से विमुख कर दिया है और इसके साथ ही मनुष्यों के बीच प्रतिस्पर्धा भी शुरू हो गई है। परिणामस्वरूप मनुष्यों के बीच अविश्वास और परस्पर तुलना की भावना ने अधिक संसाधन प्राप्त करने की इस भयंकर दौड़ ने एक ऐसी सभ्यता का निर्माण किया जिसके कारण दो विश्व युद्धों और अनेक परमाणु हथियारों का निर्माण हुआ। आज मनुष्य शस्त्रों की होड़ में इस स्थिति में पहुँच गया है कि वह पृथ्वी को कई बार नष्ट करने की क्षमता रखता है।

इस संदर्भ में पश्चिमी विचारकों विशेषकर फ्रांसीसी विचारक रेने देकार्त, जॉन लॉक, इमेनुअल कांट जैसे विचारकों के प्रभाव से मनुष्य की व्याख्या एक विवेकशील, आत्मकेंद्रित, पृथक् व्यक्ति के रूप में की गई, कुछ विचारकों ने मनुष्य के शरीर और मन की यांत्रिक व्याख्या की जिनमें व्यवहारवादी मनोवैज्ञानिक महत्त्वपूर्ण है। जिन विचारकों ने मनुष्य की व्यक्तिगतता को उसकी सामाजिकता पर अधिक महत्त्व दिया और यह माना कि वह केवल अपनी जरूरतों के कारण ही दूसरे व्यक्ति या समाज से अंत:क्रिया करता है। इस बावत थॉमस, हॉब्स एवं मैक्यावेली सरीखे विचारक महत्त्वपूर्ण हैं।[1] इसी विचार से बीसवीं सदी के महत्त्वपूर्ण मनोवैज्ञानिक सिग्मंड फ्रायड तक प्रभावित रहे। न्यूटन की भौतिकी के प्रभाव में संपूर्ण ब्रह्मांड एवं मानव जीवन की व्याख्या एक मशीन के रूप में होने लगी। इन्हीं कारणों से मानवीय संबंधों की केवल यांत्रिक जरूरत को ही स्वीकार किया गया। इन्हीं भौतिक क्रियाकलापों को मनुष्य ने अपना अंतिम लक्ष्य मानकर अपनी आंतरिक संरचना व संवेदना के विकास को नकार दिया। एडम स्मिथ सरीखे आर्थिक विचारकों ने मनुष्य के जीवन के परम ध्येय के रूप में लाभ को निश्चित किया। जहाँ तक नैतिकता का सवाल है जेरेमी बेंथम के उपयोगितावाद में अधिकतम लोगों के अधिकतम

Scanned by Scanner Go

शारीरिक सुख और संपन्नता के लिए कुछ लोगों को दुख देने में भी कोई हर्ज नहीं है।[2]

इन्हीं वैज्ञानिक, मनोवैज्ञानिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं नैतिक मान्यताओं से निर्मित जीवन दृष्टि से पश्चिमी देशों में राष्ट्र-राज्य, धर्मनिरपेक्षता, उद्योगों, और औद्योगिक समाज का निर्माण होना शुरू हुआ। जिसका परिणाम मनुष्य का मशीन के एक पुर्जे के रूप में प्रयोग और प्रकृति का बेपरवाह दोहन के रूप में सामने आया, जिसकी परिणति वर्तमान विश्व और उसके संकट के रूप में सामने आती है। इस जीवनदृष्टि में मनुष्य की यांत्रिक व्याख्या के कारण शारीरिक सुख को ही सर्वोपरि सुख माना गया और उसके भावनात्मक पक्ष को दरकिनार किया गया। तदनुरूप, एक ओर तो मनुष्य ने शारीरिक सुख-सुविधा के लिए तमाम वस्तुओं का निर्माण किया तो दूसरी ओर विश्व के अधिकतर देशों को औपनिवेशिक साम्राज्यवादी शोषण का सामना करना पड़ा और इसी साम्राज्यवादी वातावरण का सहारा लेकर 20वीं शताब्दी अनेक देशों में सर्वाधिकारवादी तानाशाहों के जन्म और दो विश्व युद्धों की गवाह बनी। परिणामस्वरूप प्रेम, शांति, विवेकशीलता, भाईचारे और रचनात्मकता की आकांक्षा के बजाए भय, आतंक, शास्त्रीकरण की होड़ और अधिक-से-अधिक भौतिक वस्तुओं की प्राप्ति तथा उनके उपभोग की कामना उपभोगतावाद का ध्येय बन गया। तत्पश्चात कल्याणकारी राज्य की अवधारणा के नाम पर कल्याण को शारीरिक सुख एवं कमानों की पूर्ति तक सीमित मान लिया गया। इस क्रम में 21वीं शताब्दी की शुरुआत उत्तर-आधुनिकतावाद व नव-उदारवाद के यौवन में वशीभूत होकर भौतिकवाद को नए आवरण में प्रस्तुत करती हुई प्रतीत हो रही है। इस प्रत्यायोजित जीवनदृष्टि ने न केवल पर्यावरण, बल्कि मानव की मूल प्रकृति को भी प्रदूषित कर दिया है।

इस जीवनदृष्टि को ही पश्चिमी/आधुनिक सभ्यता का नाम दिया गया और उपनिवेशवाद के द्वारा इसको फैलाकर अधिकतम लाभ अर्जित करने की दौड़ शुरू की गई। इस भौतिक जीवनदृष्टि के दुष्परिणामों से अवगत भारत के एक व्यावहारिक चिंतक और दूरदर्शी मोहनदास करमचंद गांधी ने हिंदू शास्त्रों के हवाले से इसे 'कलियुग' और हजरत मुहम्मद नेइसे 'शैतानी सभ्यता' का नाम दिया और इसकी वृहत् आलोचना की।[3] गाँधीजी ने इसके विकल्प के रूप में भारतीय संस्कृति से 'रामराज्य' की संकल्पना को सामने रखा और 'सर्वोदय' के लक्ष्य की प्राप्ति के लिए कार्य करना प्रारंभ किया।

गाँधीजी ने अपने विचारों को सर्वोदय (1908) एवं हिंद स्वराज (1909) नामक दो पुस्तकों में क्रमबद्ध तरीके से प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। जहाँ सर्वोदय उन्होंने जॉन रस्किन की 'अन्टू दिस लास्ट' नामक पुस्तक के सार के रूप में प्रस्तुत की, वहीं हिंद स्वराज को उन्होंने अपने संपूर्ण चिंतन को लोगों तक व्यवस्थित ढंग से पहुँचाने और प्रतिक्रिया लेने के लिए लिखा था। इसके अलावा गाँधीजी के विभिन्न भाषण, वार्ताएँ, पत्राचार, समाचारपत्र और संपूर्ण जीवन उनकी जीवनदृष्टि का बयान है। इस लेख में हम अपने विश्लेषण को प्रमुख रूप से सर्वोदय एवं हिंद स्वराज में व्यक्त गाँधीजी के विचारों पर आधारित पश्चिमी सभ्यता की आलोचना और इसके विकल्प के रूप में प्रस्तुत सर्वोदय की संकल्पना पर केंद्रित करेंगे। यहाँ गाँधीजी के विचारों को मुख्य तौर से दो भागों में विभाजित किया जा सकता है—पहला निषेधात्मक विचार, जिसमें वे पश्चिमी सभ्यता के दोषों को उजागर करते हैं। दूसरा सकारात्मक विचार, जिसमें वे भारतीय संस्कृति के विभिन्न आयामों के आधार पर अपने मौलिक विचारों का निर्माण करते हैं। पहले हम गाँधीजी के निषेधात्मक विचारों का संक्षेप में अध्ययन करते हुए उनके द्वारा की गई पश्चिमी

ISSN 0975-735X

Scanned by Scanner Go

सभ्यता की आलोचना की समीक्षा करेंगे।

पश्चिमी सभ्यता की गाँधी द्वारा निषेधात्मक विवेचना–सर्वोदय की शुरुआत में ही रस्किन के हवाले से गाँधीजी लिखते हैं कि मनुष्य की तमाम भूलों में से सर्वोपरि भूल मनुष्य की कार्य प्रणाली को एक मशीन के समान मानना और मनुष्य के 'पारस्परिक स्नेह और सहानुभूति' को उसका आकस्मिक रूप मानना है।[4] अर्थात् ऐसा मानने वाले लोग यह मानते हैं कि पारस्परिक स्नेह और सहानुभूति आकस्मिक है और मनुष्य की वास्तविक प्रवृत्ति 'लोभ और सदा आगे बढ़ने की इच्छा है।' (वही)। अत: ये लोग मानते हैं कि इन आकस्मिक गुणों को मनुष्य की तरक्की में बाधा समझते हुए इनसे बचना चाहिए और अधिक-से-अधिक धन एकत्रित करने के लिए परिश्रम और लेन-देन का काम करना चाहिए। इस तरह के विचारों को आधार बनाकर वे लोग व्यवहार की नीति नियम तय कर देना चाहते हैं, फिर चाहे लोगों द्वारा व्यवहार में पारस्परिक स्नेह और सहानुभूति का व्यवहार किया जाए या न किया जाए इससे उनको कोई फर्क नहीं पड़ता। गाँधी की दृष्टि में सभी समस्याओं की मूल जड़ यही मशीनीकृत भौतिकवादी विचार है।

वे आगे लिखते हैं कि लौकिकशास्त्र के नियम मनुष्य की भावना को नकारकर नहीं बनाए जा सकते हैं क्योंकि मनुष्य के भावनात्मक पक्ष की गणना उसके भौतिक पक्ष से भिन्न प्रकार का है लेकिन इसका मनुष्य के व्यवहार पर बहुत गहरा असर होता है। वे ऐसे लौकिक नियमों की जो मनुष्य को भावना विहीन मानकर बनाए गए हैं उनकी तुलना कसरत के उन नियमों से करते हैं जो मनुष्य को अस्थि पिंजर के बिना केवल मांस का लोथड़ा समझकर बना दिए जाएँ।[5]

यह पुस्तक तात्कालिक लौकिक व्यवहार के नीति नियम निर्माताओं पर आरोप लगाती है कि वे मनुष्य को जीवरहित एक पुर्जे के रूप में विचार करते हैं। गांधी इस विचार के विपक्ष में तर्क देते हुए कहते हैं कि अर्थशास्त्र के बहुत से नियम मनुष्य के भावनात्मक पक्ष पर लागू नहीं होते क्योंकि मनुष्य में जीव-आत्मा-रूह की प्रधानता है। इस कारण हड़ताल के समय लेन-देन के कोई नियम काम नहीं करते। चाहे इसमें मालिक और मजदूर दोनों का ही नुकसान क्यों न हो रहा हो। इसके अलावा वे एक माता और उसके बच्चे के उदाहरण द्वारा भी दिखाने का प्रयास करते हैं कि सांसारिक नियमों के अनुसार भोजन कम होने की दशा में माता बलवती होने के बावजूद खुद रोटी नहीं खा लेती है। ऐसे ही मालिक और मजदूर के संबंध में निहित परस्पर भावनात्मक संबंधों को समझना चाहिए।

आगे वे तर्क देते हैं कि यदि यह मान भी लिया जाए कि व्यक्ति को अपने हितों के लिए लड़ना चाहिए, परंतु यह भी सत्य है कि मालिक और नौकर की स्थिति हमेशा एक जैसी नहीं होती हालाँकि कुछ मामलों में जैसेकि माल की गुणवत्ता और उसका उचित दाम मिलना दोनों के हित में हो सकता है। हालाँकि लाभ के बँटवारे में दोनों का विरोध होता है, इसके अतिरिक्त यह भी जरूरी नहीं कि अत्यधिक शोषण से मालिक का लाभ होगा और अति दबाव से मजदूर का नुकसान ही होगा। कुल मिलाकर परस्पर सहयोग के कुछ नियमों के आधार पर कारोबार चल सकता है। क्योंकि लेन-देन के नियम सदैव अर्थशास्त्र पर आधारित नहीं होते, इनके भावनात्मक मायने भी होते हैं।[6] इन सभी उदाहरणों से गाँधी उपयोगितावाद एवं पूँजीवाद की धारणाओं से उत्पन्न दोषों को उजागर कर जीवन के लिए न्याय, नैतिकता और भावना व धर्म की आवश्यकता को दर्शाया है। वे यह स्पष्ट करते हैं कि अँग्रेज जाति आज तक इसलिए कायम नहीं है कि उसने अर्थशास्त्र के नियमों का पालन किया बल्कि इसलिए कायम है क्योंकि उनमें से अधिकतर ने

ISSN 0975-735X

Scanned by Scanner Go

नैतिक नियमों का पालन किया।[7]

जब वे यह लिखते हैं कि 'धन प्राप्त करने का अर्थ दूसरे आदमियों पर अधिकार प्राप्त करना, अपने आराम के लिए नौकर, व्यापार या कारीगर की मेहनत पर अधिकार प्राप्त करना है।'[8] तब वे पूँजीवादी व्यवस्था के माँग-पूर्ति के नियम में ही मनुष्यों के बीच आर्थिक विषमता की जड़ों को देखते हैं। इसके विपरीत पूँजी के एक जगह संग्रहण की तुलना पानी के एक जगह रुकने से बदबू पैदा होने और शरीर में एक जगह रक्त जमा होने से उत्पन्न बीमारी से की गई है। इसलिए धन का पानी की तरह नीचे (निर्धन) की ओर प्रवाहित होना ही उचित माना गया है। आगे पुस्तक में यह तर्क दिया गया है कि एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति से काम लेने के अधिकार से अंत में वास्तविक संपत्ति में कमी ही आती है। नीति-अनीति की परवाह किए बिना अधिकतम सस्ते दामों पर माल खरीदना और अधिकतम महँगे दामों पर बेचने से मनुष्य गर्त में चला जाएगा क्योंकि वास्तविक संपत्ति तो मनुष्य ही है बाकी सारी संपत्ति साधन मात्र है।

वहीं हिंद स्वराज में गाँधी पश्चिमी सभ्यता के दृष्टिकोण को संक्षेप में दिखाते हुए कहते हैं-'इस सभ्यता की सही पहचान तो यह है कि लोग बाहरी (दुनिया) की खोजों में और शरीर के सुख में धन्यता-सार्थकता और पुरुषार्थ (बहादुरी, बड़ा काम) मानते हैं।'[9] अगले परिच्छेद में वह कुछ मिसाल देते हैं जिस पर पश्चिमी सभ्यता गर्व करती है, जैसे वे कहते हैं कि पहले से सुख सुविधा-संपन्न घरों में रहना सभ्यता की मिसाल मानी जाती है, पहले लोग चमड़े के कपड़े और भालों का इस्तेमाल करते थे, परंतु अब वे सजावट के कपड़े और बंदूक का इस्तेमाल करते हैं। जूते पहनना, बैलगाड़ी की जगह रेलगाड़ी का प्रयोग, हल की जगह भाप यंत्रों का प्रयोग इत्यादि को सभ्यता की निशानी माना गया। यह भी माना जाता है कि जैसे-जैसे सभ्यता आगे बढ़ेगी मनुष्य को कुछ करने की जरूरत ही नहीं रहेगी, वह बटन दबाएगा और काम हो जाएगा। पहले लोग लड़ते थे तो शरीर आजमाइश होती थी अब बम से हजारों लोगों को मिनटों में मारा जा सकता है, पहले किसी इंसान को जितनी जरूरत होती थी उतना स्वतंत्रता से काम करता था अब लोग शहरों में इकट्ठे होकर जानवरों की सी दशा में कार्य करते हैं, लेकिन इसका लाभ भी कुछ पैसे वाले ही उठाते हैं, फर्क सिर्फ इतना है कि पहले लोगों को मारपीट कर गुलाम बनाया जाता था अब लालच से गुलाम बनाया जा रहा है। (वही)

गाँधीजी मानते हैं कि यह सभ्यता अनीति और अधर्म पर आधारित है जो यूरोप में इस कदर फैल चुकी है कि वहाँ के लोग आधे पागल के समान लगते हैं उनमें कोई शक्ति नहीं रह गई है वे नशे से बनावटी ताकत पैदा करते हैं और एकांत में बैठ भी नहीं सकते हैं। वे आगे कहते हैं इस सभ्यता की सड़ाँध ने अँग्रेजी प्रजा में घर कर लिया है। गाँधी इस सभ्यता की तुलना एक रोग से करते हैं।[10] वे यह भी मानते हैं कि भारत को अँग्रेजों से ज्यादा उनकी भौतिक सभ्यता से खतरा है क्योंकि भारत इसकी चपेट में आता जा रहा है क्योंकि हम धर्म से विमुख होते जा रहे हैं। इस सभ्यता में नीति या धर्म की बात ही नहीं है। ध्यातव्य है कि गाँधी धर्म और किसी एक मजहब हिंदू, मुस्लिम या जरथोस्ती में अंतर करते हैं और वे इन सभी मजहबों में निहित 'धर्म' की बात करते हैं। इसलिए उनका धर्मभ्रष्ट होने से तात्पर्य ईश्वर विमुख होने से है।[11]

अमीर और गरीब दोनों को ही ईश्वर द्वारा बनाया गया है इसलिए मजदूर की मेहनत का उचित पारिश्रमिक तो तब मिलेगा जब हम समय पड़ने पर उनके लिए भी उतनी ही मेहनत कर उनका भुगतान करें। लेकिन हम तो माँग व पूर्ति के नियम के चलने यह भी ख्याल नहीं रखते कि

ISSN 0975-735X

Scanned by Scanner Go

उसे भरपेट भोजन भी मिल पा रहा है या नहीं। वहीं दूसरी ओर व्यर्थ धन इकट्ठा करने से अमीरों में भोग-विलास की प्रवृत्ति में वृद्धि होगी। इसके विपरीत यदि मजदूरी का उचित दाम दिया जाएगा तो वह अन्य को उचित दाम दे सकेगा और अंत में समाज में न्याय-बुद्धि विकसित होगी और संपूर्ण राष्ट्र फलेगा-फूलेगा।[12] यह पुस्तक प्रतिस्पर्धा को मजदूरी कम करने का कारण बताती है, जो राष्ट्र के लिए विनाशकारी है। अतः यह प्रतिस्पर्धा के बजाए योग्यता के अनुसार भुगतान को बेहतर मानती है क्योंकि इससे कार्य कुशलता में वृद्धि होगी।

लेकिन 'जहाँ धन ही परमेश्वर है, वहाँ अन्याय, ठगी व हड़ताल इत्यादि बढ़ जाएगी और अंत में महाजन, व्यापारी एवं ग्राहक सभी दुख भोगते हैं।[13] लोगों की अनैतिक तरीके से धन कमाने की लालसा गाँधी के विचार में 'विनाशकाले विपरीत बुद्धि' के समान है। उनके द्वारा आगे सुझाया जाता है कि ये आर्थिक नियम मनुष्य की वास्तविक प्रकृति पर सही विचार न करने के कारण बनाए गए हैं इसलिए सभी दुखी हैं। दुनिया के सभी युद्धों के पीछे धन का ही लोभ है और अधिकतर बड़े धनवान अनीति करने वाले हैं। गाँधी सच्चा श्रम और हानिकर श्रम के मध्य भेद भी करते हैं उनके अनुसार सच्चा श्रम मनुष्य के भरण-पोषण के लिए काम करता है, जैसे अन्न पैदा करता है वही हानिकर श्रम धन के लोभ में गोला-बारूद बनता है, बेकारी फैलाता है और लोगों को आलसी बना देता है।[14]

यदि हम गाँधी द्वारा की गई इस विस्तृत आलोचना के कुछ मूल बिंदु निकालने का प्रयास करें तो पहला बिंदु है कि पश्चिमी सभ्यता ने मनुष्य के सुख को शारीरिक सुख तक सीमित कर दिया और शारीरिक सुख के लिए अधिकतम वस्तुओं की प्राप्ति को मानव जीवन का ध्येय बना दिया, जिसके परिणामस्वरूप विश्व में संसाधनों के लिए संघर्ष होना अपरिहार्य हो गया। दूसरा, उन्होंने अधिकतम लोगों के सुख के लिए नीति के नियमों के उल्लंघन की परवाह नहीं की। इस विचार में अधिकतम लोगों को सुख पहुँचाने के लिए कुछ लोगों कष्ट भी दिया जा सकता है। इसके अलावा मनुष्य के धार्मिक एवं अध्यात्मिक पक्ष को नकारने के कारण गाँधी इस सभ्यता में किसी छोटे-मोटे बदलाव की गुंजाइश नहीं देखते बल्कि इसके विकल्प के रूप में अध्यात्म पर आधारित अपनी जीवनदृष्टि को रखते हैं, जिसका लक्ष्य आपसी संघर्ष न होकर 'सर्वोदय' है।

सर्वोदय की अवधारणा : एक सकारात्मक विकल्प–अब हम गाँधीजी के रचनात्मक विचारों का विश्लेषण करेंगे। सभ्यता को कैसा होना चाहिए? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए हिंद स्वराज में गाँधी भारतीय संस्कृति में गर्व का अहसास करते हुए यह कहते हैं–'जो सभ्यता हिंदुस्तान ने दिखाई है, उसको (उस तक) दुनिया में कोई नहीं पहुँच सकता। जो बीज हमारे पुरखों ने बोए हैं, उनकी बराबरी कर सके ऐसी कोई चीज देखने में नहीं आई। रोम मिट्टी में मिल गया, ग्रीस का सिर्फ नाम ही रह गया, मिस्र की बादशाही चली गई, जापान पश्चिम के शिकंजे में फँस गया और चीन का कुछ भी कहा नहीं जा सकता। लेकिन गिरा टूटा जैसा भी हो, हिंदुस्तान आज भी अपनी बुनियाद में मजबूत है।'[15]

आगे वे भारतीय सभ्यता की विशेषता स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि 'सभ्यता वह आचरण है जिससे आदमी अपना फर्ज अदा करता है। अदा करने के मानी है–नीति का पालन करना। नीति के पालन का मतलब है अपने मन और इंद्रियों को बस में रखना। ऐसा करते हुए हम अपने को पहचानते हैं। यही सभ्यता है। इससे जो उलटा है वह बिगाड़ करने वाला है।[16]

इन विचारों के साथ ही हम गाँधीजी के सकारात्मक विचारों का विश्लेषण शुरू करते हैं

ISSN 0975-735X

Scanned by Scanner Go

1. **सर्वोदय का अर्थ**–सर्वोदय एक संस्कृत शब्द जो सर्व+उदय दो पदों से निर्मित हुआ है। अतः सर्वोदय का अर्थ है सभी का उत्थान या सभी की प्रगति या सभी का उदय। गाँधी द्वारा प्रतिपादित इस संकल्पना में 'सर्वभूत हितेशता:' का वैदिक विचार, सुकरात की 'सत्य-साधना' और रस्किन की 'अंत्योदय की अवधारणा' सब-कुछ सम्मिलित है।[17] गाँधीजी ने प्रमुखतः इन तीनों के आधार पर अपनी सर्वोदय की संकल्पना को विकसित किया। सर्वोदय का अर्थ है–सबकी समान उन्नति। यह विचार बेंथम और मिल के उपयोगितावाद के एक विकल्प रूप में अपने को प्रस्तुत करता है। जैसाकि हम पहले भी इस बात पर विचार कर चुके हैं कि उपयोगितावाद अधिकतम व्यक्तियों का अधिकतम सुख प्रदान करने का पर्याय माना जाता है। लेकिन यह सर्वहित की अवधारणा न होकर, बहुसंख्यक वर्ग के लाभ पर केंद्रित है।

वहीं सर्वोदय का विचार सबकी उन्नति की बात करता है। ऐसे में हमारे मन में संदेह होता है कि ऐसा कैसे संभव है कि सबकी प्रगति हो सके। इस संदेह को दूर करने के लिए हमें गाँधीजी के उन्नति या उदय शब्द के अर्थ को समझना होगा। यहाँ किसी व्यक्ति की उन्नति का तात्पर्य अधिकतम धनार्जन या वस्तुओं का संग्रहण नहीं है बल्कि आवश्यकताओं की पूर्ति और अध्यात्मिक उन्नति है। इस विचार से यह भी स्पष्ट होता है कि जब तक हम वस्तुओं के लिए प्रतिस्पर्धा में लगे रहेंगे तब तक आपसी संघर्ष को विराम नहीं दिया जा सकता है, परंतु जब हम आध्यात्मिक उन्नति को लक्ष्य बनाते हैं तो उसमें सभी मनुष्य एक-दूसरे से बिना संघर्ष के समान उन्नति ही नहीं करेंगे बल्कि एक-दूसरे के सहयोगी बनने की संभावना अधिक होती है। ऐसे में हमें सर्वोदय शब्द के दूसरे अर्थ का भी ख्याल आता है अर्थात् 'सब प्रकार से उदय।'[18] जिसके मायने मनुष्य के शारीरिक, मानसिक और अध्यात्मिक आयामों की समुचित प्रगति है, जिससे मनुष्य जाति सर्वांगीण विकास की ओर अग्रसर हो, न कि वस्तुओं और मशीनों पर निर्भर होकर खुद को कमजोर कर ले।

2. **सर्वोदय का व्यावहारिक पक्ष**–गाँधी के लिए 'सर्वोदय' के लक्ष्य के रूप में राज्यविहीन, शोषणविहीन, समान पारिश्रमिक, आत्म-अनुशासित और आत्म-निर्भर समाज का निर्माण करना था। इस आदर्श के पक्ष के अधिकतर तत्त्व मार्क्सवाद के समान प्रतीत होते हैं, हालाँकि इनमें कुछ समानताएँ हैं, परंतु दोनों विचारों में मूल अंतर यह है कि मार्क्स उत्पादन के साधनों को ही परिवर्तन का मुख्य आधार समझते थे और उनके संपूर्ण विचारों में सर्वहारावर्ग का इन साधनों पर नियंत्रण होना सर्वाधिक महत्त्व रखता है। जबकि गाँधी के विचारों में मनुष्य की चेतना ही उसके नैतिक मूल्यों के परिवर्तन का मार्ग प्रदान करती है। इसी कारण दोनों विचारधाराओं में लक्ष्य प्राप्त करने के साधनों में भी अंतर आ जाता है। जहाँ पहले के लिए साध्य प्राप्ति के लिए कोई भी साधन लिया जा सकता है, वहीं दूसरे के लिए साध्य के समान साधन की शुद्धता भी उतनी ही महत्त्वपूर्ण है।

3. **व्यक्ति एवं राज्य के मध्य समाज**–सर्वोदय के विचार में समाज व्यक्ति एवं राज्य की तुलना में अधिक महत्त्वपूर्ण है। सर्वोदय पश्चिमी सभ्यता के व्यक्तिवाद की तुलना में समाज को अधिक महत्त्व देता है और व्यक्ति पर समाज के नियंत्रण को भी स्वीकार करता है और सामाजिक राय निर्माण की बात भी करता है। वहीं दूसरी ओर गाँधी एक व्यक्ति के स्वराज की बात भी करते हैं, जिसमें राज्य की न के बराबर दखल होगी। यहाँ व्यक्ति अपने पारलौकिक स्वरूप ब्रह्म से एकाकार के लिए धर्म का पालन करता है।[19] इस तरह से गाँधी के विचार में राज्य की स्थिति

 ISSN 0975-735X

Scanned by Scanner Go

समाज की तुलना में कमजोर हो जाती है लेकिन यहाँ समाज का तात्पर्य रूसो की सामान्य इच्छा की तरह बहुमत का दबाव भी नहीं है। क्योंकि सर्वोदय के विचार में यह व्यक्ति के मूल्य और धर्म सर्वोपरि है जोकि उसके स्वराज्य का आधार है।[20]

सर्वोदय के विचार में यह मान्यता समाहित है कि जब तक अर्थव्यवस्था में नैतिक एवं आध्यात्मिक पक्ष का समावेश नहीं होता तब तक शोषण एवं भ्रष्टाचार को समाप्त नहीं किया जा सकता है। इसलिए गाँधी ने नैतिक मूल्य के तौर पर सत्य व अहिंसा को स्थापित किया और राजनीतिक व आर्थिक विकेंद्रीकरण को लक्ष्य बनाया।

4. **विकेंद्रीकरण सर्वोदय की धुरी**–गाँधी के विकेंद्रीकरण के विचार को समझने के लिए हम इसे दो भागों में बाँटेंगे–पहला आर्थिक विकेंद्रीकरण और दूसरा राजनीतिक विकेंद्रीकरण। असल में गाँधी की जीवनदृष्टि में ये दोनों तत्त्व अलग हैं ही नहीं, लेकिन फिर भी वर्तमान व्यवस्था के संदर्भ में समझने के लिए हम इन्हें दो भागों में विभाजित कर रहे हैं। राजनीतिक विकेंदिकरण का लक्ष्य गाँवों को स्वायत्त करना है, राज्य में वर्गविहीन, जाति विहीन व शोषण विहीन समाज की स्थापना करना है। वही आर्थिक विकेंद्रीकरण का लक्ष्य आत्मिक शुद्धि और धन को थोड़े से व्यक्तियों, संस्थाओं अथवा राज्य के हाथों में केंद्रित नहीं होने देना है।[21]

5. **कुटीर एवं छोटे उद्योगों का महत्त्व**–हम पहले भी विचार कर चुके हैं कि गाँधी मशीन एवं सत्ता के एकीकरण से मनुष्य पर पड़ने वाले दुष्प्रभाव के प्रति सचेत थे। इसलिए उन्होंने कुटीर और छोटे उद्योगों पर आधारित अर्थव्यवस्था को इन सभी लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए उचित साधन समझा। कुटीर उद्योग छोटे गाँवों और कस्बों में सामाजिक मेल-मिलाप का केंद्र बन सकते हैं ताकि लोगों में सामूहिक रूप में काम करने व एक-दूसरे के सुख-दुख में साथ देने की प्रवृत्ति विकसित हो सके। इसके अलावा गाँधीजी का उद्देश्य दूर देश तक बाजार बनाना न होकर स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति करना रहा है। अत: यहाँ का माहौल फैक्टरी के समान प्रतिस्पर्धी न होकर सहयोगात्मक गतिविधियों का होगा। इसके अलावा ये स्थानीय पसंद और जरूरतों के हिसाब से वस्तुओं के रूप व आकार में परिवर्तन भी कर सकते हैं। इससे वैश्विक अर्थव्यवस्था के अप्रत्याशित उतार-चढ़ावों के नुकसानों से बचा जा सकता है।

6. **राजनीतिक विकेंद्रीकरण का आर्थिक आधार**–हम देख चुके हैं कि यदि आर्थिक विकेंद्रीकरण होगा तो इससे राजनीतिक विकेंद्रीकरण में भी मदद मिलेगी। असल में ये दोनों एक-दूसरे से गहरे से जुड़े हैं। लेकिन वर्तमान भौतिक वातावरण में धन, तकनीक और राजनीति के गठबंधन से लोककल्याण की राह को अनसुना कर, अधिकतम लाभ को लक्ष्य बनाकर प्राकृतिक संसाधनों का अनियंत्रित दोहन किया जा रहा है। जब तक यह उद्योगों से धन एवं सत्ता का एक जगह केंद्रीकरण बंद नहीं हो जाता, तब तक राजनीतिक विकेंद्रीकरण संभव नहीं है। इस कारण सर्वोदय के विचार में निहित छोटे उद्योगों का संचालन आम लोगों द्वारा होगा जिससे इन सब समस्याओं से बचा जा सकता है। गाँधीजी की मान्यता थी कि सत्ता व्यक्ति को भ्रष्ट कर देती है और जिसके पास जितनी अधिक सत्ता होती है उसके उतना ही भ्रष्ट होने की संभावना रहती है इसलिए वे शासन के किसी एक स्तर पर केंद्रित करने के पक्षधर नहीं थे।[22]

7. **ग्राम स्वावलंबन एवं सर्वोदय का नैतिक पक्ष**–सर्वोदय समस्त समाज के सुख को अपना लक्ष्य बनाकर चलता है। इसलिए इसकी नींव प्यार एवं स्नेह के बंधन, सामुदायिक विश्वास एवं पारस्परिकता की भावना से जुड़ी हुई है। गाँधीजी के अनुसार यह भावना शहरों की अपेक्षा ग्रामीण

ISSN 0975-735X

Scanned by Scanner Go

क्षेत्रों में अधिक पाई जाती है। क्योंकि गाँव में व्यक्ति एक-दूसरे से भली-भाँति परिचित होते हैं और उनमें आपसी विश्वास बहुत गहरा होने की संभावना रहती है। इसी कारण गाँधीजी एवं सर्वोदय के अन्य पुरोधा छोटे गाँव व कस्बों की स्वायत्तता के पक्षधर हैं।[23] गाँधीजी के विश्व दृष्टि में सर्वोदय द्वारा अभिव्यक्त आत्मनिर्भरता तथा संगी-साथियों के लिए सेवा का विचार सामाजिक तथा नैतिक दृष्टि से व्यक्ति की परस्पर सहयोग की भावना के लिए अति महत्त्वपूर्ण है।

ग्राम स्वावलंबन से सर्वोदय ने संपूर्ण समाज के विकास के लक्ष्य को स्वीकार करते हुए ग्रामोदय को प्राथमिकता दी है। गाँधीजी के अनुसार, 'गाँव के उत्थान का अर्थ है–राष्ट्र का उत्थान। इस प्रकार बहुसंख्यक गरीबों के उत्थान का अर्थ है–देश का उत्थान।'[24] गाँधीजी ने हृदय परिवर्तन, स्वचिंतन, स्वशासन के द्वारा एक नए प्रकार की अर्थव्यवस्था का संयोजन किया। इस अर्थव्यवस्था का लक्ष्य अधिकतम लाभ न होकर जीवन के उच्चतर आयामों को छूने के लिए प्रत्येक व्यक्ति को सक्षम बनाना है। ग्राम स्वावलंबन में प्रत्येक व्यक्ति को अपने श्रम से संपादन करने पर बल दिया है। सभी व्यक्तियों को अपने परिवार के भरण-पोषण के लिए भूमि वितरित हो ताकि आवश्यकता से अधिक भूमि किसी एक व्यक्ति के पास न हो। इससे जमींदारी प्रथा और खेतिहर दासता की समाप्ति को भी लक्ष्य बनाना है। ताकि समाज के सभी लोगों के सर्वोदय के आधार पर आध्यात्मिक उन्नति संभव हो सके।[25]

निष्कर्ष : वर्तमान महामारी के दौर में भी गाँधी के द्वारा पश्चिमी सभ्यता की उस समय की गई आलोचना बहुत प्रासंगिक प्रतीत होती है। जहाँ, वे लालच से चालित मनुष्य द्वारा बिना सोचे-समझे प्रकृति से छेड़छाड़ और रेलयात्रा और हवाईयात्रा के चलते नई-नई बीमारियों के वैश्विक फैलाव के खतरे की बात उठाते रहे थे। वहीं वे तकनीक के मानवीय रिश्तों पर, रोजगार, उद्योग और स्वास्थ्य पर पड़ने वाले दुष्प्रभावों का अनुमान भी एक सदी पहले लगा चुके थे। दो विश्वयुद्धों के बाद तो इस सभ्यता की आलोचना पश्चिम में भी शुरू हो गई थी। गाँधी पश्चिमी सभ्यता की आलोचना के साथ इससे बचने के कई व्यावहारिक सुझाव देते हैं जिनके गुण-दोषों का विश्लेषण हमने इस लेख में करने का प्रयास किया है। लेकिन आज हम सभी आधुनिक सभ्यता की चकाचौंध में इस दर्जे तक आगे बढ़ चुके हैं कि गाँधी के द्वारा दिए गए अधिकतर सुझाव हमें असंभव और अव्यावहारिक प्रतीत हो रहे हैं। आज जरूरत इस बात की है कि हमें उनके विचारों का आलोचनात्मक परीक्षण करते हुए उन्हें अपनाने की शुरुआत अवश्य करनी चाहिए, ताकि अगर संभव हो तो हम अपने जीवन में उन्हें अपना सकें और अन्य लोगों के साथ उनके सकारात्मक पक्षों को साझा कर सकें।

इस लेख में सर्वोदय की अवधारणा का एक वैकल्पिक जीवन-दृष्टि के तौर पर विश्लेषण करते हुए यह साफ हुआ कि मनुष्य द्वारा केवल अपने शारीरिक और तार्किक पक्ष पर अधिक ध्यान देने से प्रतिस्पर्धा और संतुष्टि का वातावरण हमारे लिए मूल समस्या बन गया है। अतः यदि हम मानव के आध्यात्मिक और भावनात्मक पक्ष का उत्थान करना प्रारंभ कर दें तो इस दशा को बदला जा सकता है। इस क्रम में नैतिक उन्नति के लिए सत्य और अहिंसा के मूल्यों का संधान किया जा सकता है। आर्थिक उन्नति के लिए विकेंद्रीकरण और कुटीर एवं छोटे उद्योगों के महत्त्व को पुनः स्वीकार कर कुछ व्यावहारिक नीतियाँ बनाई जा सकती हैं। वहीं राजनीतिक दृष्टि से विकेंद्रीकरण के लिए ग्राम-स्वावलंबन और समाज के महत्त्व को स्वीकार करना जरूरी है, विशेषकर, करोना महामारी में गाँव की ओर हुए भारी मात्रा में पलायन से यह एक बार फिर से

ISSN 0975-735X

Scanned by Scanner Go

साफ हो गया है कि भारत की आत्मा उसके गाँव ही हैं। संकट के समय गरीब और कमजोर को वही सहायता दे सकते हैं, जबकि आधुनिक तरक्की के प्रतीक बड़े शहर उन्हें एक माह तक भी नहीं थाम सके। अतः आवश्यक रूप से सही साधनों के सही प्रयोग से वर्ग विहीन, राज्यविहीन और शोषण विहीन समाज की व्यवहारिकता की संभावना तलाशने का यह सर्वाधिक उचित अवसर है। इस उदेश्य की पूर्ति के लिए भारतीय इतिहास और संस्कृति की तमाम संपदा का उपयोग किया जा सकता है और स्थानीय समस्याओं के स्थानीय समाधान के उदाहरण को विश्व के लिए पेश किया जा सकता है।

संदर्भ

1. मैकपर्सन, सी॰बी॰ (1962), द पॉलिटिकल थ्योरी ऑफ पॉजेसिव इंडिविजुअलिज्म हॉब्स टू लॉक, ऑक्सफोर्ड: क्लेरेंडन प्रेस
2. स्टीवन ल्यूक्स, (1974), इंडिविजुअलिज्म, ऑक्सफोर्ड: बेसिल ब्लैकवेल
3. एम॰ के॰ गांधी, (1951), हिंद स्वराज, नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद, पृ॰ 20
4. एम॰ के॰ गांधी, (2011), सर्वोदय, सस्ता साहित्य प्रकाशन मंडल, दिल्ली, पृ॰ 7
5. वही, पृ॰ 9
6. वही, पृ॰ 10
7. वही, पृ॰ 1.9
8. वही, पृ॰ 21
9. एम॰ के॰ गांधी, (1951), हिंद स्वराज, नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद, पृ॰ 18
10. वही, पृ॰ 20
11. वही, पृ॰ 24.
12. एम॰ के॰ गांधी, (2011), सर्वोदय, सस्ता साहित्य प्रकाशन मंडल, दिल्ली, पृ॰ पृ॰ 27-31
13. वही, पृ॰ 32
14. वही, पृ॰ 34-35
15. एम॰ के॰ गाँधी, (1951), हिंद स्वराज, नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद, पृ॰ 42
16. वही, पृ॰ 43
17. मीना बरडिया, (2017), गांधी के आध्यात्मिक सर्वोदय पर पुनः दृष्टिपात, काव इंटरनेशनल जर्नल ऑफ इकोनॉमिक्स, कॉमर्स एंड बिजनेस मैनेजमेंट, 4(4), पृ॰ 264-267
18. वही, पृ॰ 264
19. एम॰ के॰ गांधी, (1955), माई रिलिजन, नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद, पृ॰ 124
20. आई रॉदरमुंड, (1969), द इंडिविजुअल एंड सोसाइटी इन गांधी, जपोलिटिकलथॉट, जर्नल ऑफ एशियन स्टडीज, 28(2), 313-320, पृ॰ 315
21. रामजी सिंह, गांधी दर्शन मीमांसा, बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, पटना, 1973, पृ॰ 44
22. रुचि त्यागी, (2020), 'सर्वोदय' एवं गांधीजी के राज्य प्रशासन संबंधी दृष्टिकोण, भारतीय लोक प्रशासन संसथान, विशेषांक, जुलाई-दिसंबर 12 (2) पृ॰ 56-74
23. वी॰पी॰ वर्मा, दी पोलिटिकल फिलॉसफी ऑफ महात्मा गांधी एंड सर्वोदय, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा, 1965, पृ॰ 369-370
24. यंग इंडिया, 13 अक्टूबर 1921
25. हरिजन, 20 अप्रैल, 1940

ISSN 0975-735X

Scanned by Scanner Go